International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 26-11-2019; Accepted: 27-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 78-79

अरुण कमल की कविता में पूँजीवादी विरोधी स्वर: नये इलाके में कविता संग्रह के विशेष संदर्भ में

डॉ. रंगस्वामी.एन
सहायक प्रोफसर, हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी मेमोरियल आर्ट्स आन्ड साइंस कॉलेज, अट्टपाडी, पालक्काड, केरल, भारत

प्रस्तावना

अरुण कमल समकालीन साहित्यिक जगत् के अनोखी कवि हैं। जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से वर्तमान समाज की समस्याओं तथा समकालीन जीवन बोध का चित्रण किया है। वर्तमान समय के अनेक यथार्थ प्रसंगों को अपनी कविताओं में उकेरने की कोशिश उन्होंने की है। अरुण जी अन्याय, अनीति, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करने वाले कवि हैं। समाज में जनसाधारण को कोई स्थान नहीं है। पूँजीवादी लोग उनके ऊपर करते आ रहे अन्याय, अनीति एवं अत्याचार को अपनी नियति मानकर जीवन यापन कर रहे हैं। अरुण जी सर्वहारा, मज़दूर, दलित, उत्पीड़ित वर्गों के ऊपर किए गए शोषण के विरुद्ध अपनी वाणी का प्रयोग करते हैं। वे पूँजीवादी, वर्चस्ववादी ताकतों के प्रति प्रतिकार एवं अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में करते हैं।

अरुण जी अपने समय की ज्वलंत मुद्दों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने वाले हैं। दरअसल उनकी कविताएँ पूँजीवाद, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के वर्चस्ववाद, भ्रष्टाचार, अनीति, अत्याचार, अन्याय के खिलाफ़ प्रतिरोध की कविता बन जाती है। अपने समय के प्रति संवेदना उनकी कविता की खासियत है। अरुण जी की कविता में अपने समय की सही पहचान मिलती है।

आज संसार भर में पूँजी हावी है। दिन व दिन विश्व भर भूख से मरते लोगों की तादात बढ़ते जा रहे हैं। जिनके पास पैसे हैं, वे लोग आम जनता को शोषण का शिकार बनते जा रहे हैं। वास्तव में भूख तथा अकाल पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। सर्वहारा, हाशिएकृत, मज़दूर लोग पूँजीवादी लोगों के खेतों में मेहनत करते हैं, बल्कि मुनाफा पूँजीवादी, सत्तावर्ग लेते हैं। इन्हीं लोगों को पेट भर भोजन भी न मिल रहा है। इस पर विचार विमर्श करते हुए अरुण जी यों लिखते हैं कि-

"पहले खेत बिके
फिर घर फिर जेवर
फिर बर्तन
और वो सब किया जो गरीब और अभागे
तब से करते आ रहे हैं जब से यह दुनिया बनी
इस तरह एक-एक कर घर उजड़े गाँव उजड़े
और नहर महानगर बने
पर कोई नहीं बोलता ऐसा हुआ क्यों
अब कोई नहीं पूछता यह दुनिया ऐसी क्यों है
बेबस कंगालों और बर्बर अमीरों में बँटी हुई है।"1

पूँजीवादी वर्चस्व ने किसी एक राष्ट्र को नहीं बल्कि सारे संसार को अपने कब्जे में कर लिया है। पूँजीवादी व्यवस्था ने सबकुछ हमारे हाथों से छीन लिया है। हमारी संस्कृति, आचार एवं अनुष्ठान, हमारी सांस्कृतिक विरासत आदि को। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आम जनता का जीवन कठिन बन गया है। मुठ्टी भर में भोजन खाने के लिए भी उन लगों को हक नहीं है। पूँजीवादी लोग सर्वहारा, मज़दूर तथा कृषक वर्गों की हड्डियों को चूसकर मुनाफा कमाते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं घृणा की अभिव्यक्ति करते हुए अरुण जी जताते हैं कि-

"बाज़ार में बहुत सन्नाटा था
सारा संसार काँच के पार
और मैं शीशे से नाक सटाये-
एक जगह जूते दिखे हिरण की खाल के
और कुमार गंधर्व की भरी हुई बोली
अचानक मुझे अमरावती दिखी नमक की डली
जो झलकी फिर विलीन हो गयी
जिधर मंडी थी दाल की।"2

बाज़ारीकरण और बाज़ार अमीर लोगों के लिए है। इसमें आम आदमी को कोई भी स्थान तो नहीं है। बाज़ार में चीज़ों की कीमत बढ़ने के कारण ये चीज़ें जो है साधारण लोगों के लिए अप्राप्य है। पूँजी के अभाव के कारण इन लोगों को अपनी मन पसंद चीज़ों को खरीदना मुश्किल हो गया है। पूँजी के इस अप्रतिम वर्चस्व पर व्यंग्याक्रोश करते हुए अरुण जी लिखते हैं कि-

"मेरे पास न पूँजी थी न पण्य
मैं बाट भी न था कि हाट के आता काम
न पाप कमाया न पुण्य न ही रहा अक्षत
दिन भर घूमता ढ़ली देह लिए लौटा धाम।"3

बाज़ारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने संस्कृति को अपसंस्कृति बनते जा रहे हैं। मानवीय मूल्य, नैतिकता, नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास इसके मुताबिक हुआ है। संवेदन शून्यता, स्वार्थता, धोखा, छल कपट, वंचना, भ्रष्टाचार, अन्याय, अनीति तथा असभ्यता इनकी देन है। मनुष्य इसे समझे बिना इसके पीछे जाते हैं। मनुष्य पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं। हमारी संस्कृति, सभ्यता को खोटा-छोटा समझते हैं। इसलिए संवेदनता के स्थान पर संवेदन शून्यता, नीति के स्थान पर अनीति, न्याय के स्थान पर अन्याय एवं निस्वार्थता के स्थान पर स्वार्थता की स्थापना हुई है। बाज़ारवाद के केंद्र धन है। इसके कारण मनुष्य आत्मकेंद्रित बनते जा रहे हैं। वे यांत्रिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। अपने पड़ोसवाले की वेदना एवं दुःख दर्द को समझने के लिए उनके पास समय नहीं है। सब लोग मुनाफा कमाने के लिए रफ़्तार में है। पारिवारिक विघटन, रिश्तों एवं संबंधों का टूटन ये सब भूमंडलीकरण एवं बाज़ारीकरण की देन है। इसके जंजीरों से बचना आज नामुकिन सा बन गया है।

विस्थापन की समस्या जो है वह पूँजीवाद की देन है। बड़े-बड़े कंपनियों एवं मकानों का निर्माण करने के लिए ज़मीनों को छीन कर लोगों को वहाँ से विस्थापित कर देते हैं। खुद सुरक्षित रहने के लिए आम लोग इधर-उधर भटकते रहते हैं। इस पर आक्रोश तथा विद्रोह प्रकट करते हुए वे बयान करते हैं कि-

"एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया
जैसे बसंत का गया पतझड़ को लौटा हूँ

जैसे बैशाख का गया भादों को लौटा हूँ
अब यही है उपाय कि हर दरवाज़ा खटखटाओं और पूछों-
क्या यही है वो घर ?"4

पूँजीवादी व्यवस्था ने विश्व भर में अपना वर्चस्व बना लिया है। आर्थिक उदारीकरण, खुली बाज़ार आदि के कारण देशों में बेरोज़गारी की समस्या दिन व दिन बढ़ते जा रहे हैं। सामाजिक असमानता, आर्थिक असमानता आदि पूँजी की देन है। इस पर व्यंग्य करते हुए वे यों व्यक्त करते हैं कि-

"आज धनतेरस है
नये-नये बर्तन खरीदने का दिन
और आज ही हम अपने आखिरी बर्तन लिये
घूम रहे हैं दुकान-दुकान
आने का सवाल क्या
जो कुछ पास था सब जा रहा है
देखो वे कितनी बेरहमी से थकुच रहे हैं
हमारे पुराने बर्तन
और सजा रहे हैं एक पर एक
अपने नये बर्तन।"5

निष्कर्ष

रूप में कह सकते हैं कि अरुण जी की कविताओं में पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ मुखरित है। वे अपनी सहज, सरल भाषा के माध्यम से सही एवं स्पष्ट रूप से पूँजीवादी व्यवस्था की भीषणता पर सही पहचान कराते हैं। साथ ही साथ बाज़ारवादी, उपभोक्तावादी शक्तियों के शिकंजे में फँस जाने से बचने का आह्वान भी वे अपनी अद्वितीय कविताओं के माध्यम से करते हैं। सच्चे अर्थ में अरुण जी समसामयिक मुद्दों को व्यंग्य रूपी हथियार के ज़रिए बेनकाब करते हैं। इसमें वे सक्षम भी सिद्ध हुए है।

संदर्भ सूची

1. मैं वो शंख महाशंख, अरुण कमल, पृ.सं. 56
2. नये इलाके में, अरुण कमल, पृ.सं. 20
3. नये इलाके में, अरुण कमल, पृ.सं. 20
4. नये इलाके में, अरुण कमल, पृ.सं. 14
5. सबूत, अरुण कमल, पृ.सं. 35